समायोजन से समावेशन

गजालक्ष्मी टी

मेरी कक्षा में कुछ विद्यार्थी बेहद शरारती थे। कक्षा और स्कूल, दोनों जगह पर उनके व्यवहार को बदलना मुझे चुनौतीपूर्ण लगता था। लगभग 50 फ़ीसदी बच्चे इरूलर (नारिकुरावर्गल) समुदाय से आते थे। उनके सीखने की प्रक्रिया पर आसपास के माहौल का बहुत असर था। मसलन, वे स्कूल में थूकते थे, चाकू या ब्लेड जैसी धारदार वस्तुएँ साथ लाते थे, अभद्र भाषा का प्रयोग करते थे, आदि। सीखने की उनकी अलग तरह की ज़रूरतों को पहचानते हुए, सफल होने में उनकी मदद करने के लिए मैंने उनके अनुकूल मदद प्रदान करने पर ध्यान केन्द्रित किया।

सबसे पहले, मैंने उन बच्चों के अभिभावकों से उनके व्यवहार के बारे में बात की। मैंने अभिभावकों को बच्चों द्वारा अभद्र भाषा बोलने को हतोत्साहित करने, और अपने बच्चों के स्कूल बैग में नियमित रूप से धारदार वस्तुओं की तलाशी लेने का सुझाव दिया। फिर बच्चों की हरकतों का ध्यान से अवलोकन करना शुरू किया। इन बच्चों के लिए विशेषतौर पर ऐसी गतिविधियाँ तैयार कीं, जो उनकी ऊर्जा को सकारात्मक तरह से सीखने-सिखाने में लगा सकें। उन्हें कुछ ज़िम्मेदारियाँ दीं, और उनके कामों (अध्ययन सम्बन्धी) को पूरा करने में उनकी मदद की। धीरे-धीरे उनके व्यवहार में बदलाव नज़र आए। मैंने उन्हें उनके व्यवहार और भावनाओं पर नियंत्रण पाने की कुछ तरक़ीबें सिखाईं। जैसे– ग़ुस्सा आने पर गहरी साँस लेना या दस तक गिनती गिनना, आदि। ये तरक़ीबें बेहद प्रभावी साबित हुईं। बच्चों के सकारात्मक व्यवहार को प्रशंसा, विशेष सहूलियतों या छोटे प्रोत्साहनों से पुरस्कृत किया, जिसने उन्हें आगे भी अच्छा व्यवहार करने के लिए प्रेरित किया।

इरूलर (नारिकुरावर्गल) समुदाय से आने वाले विद्यार्थियों को शिक्षा तक पहुँच पाने के लिए व्यवहारगत पहलुओं के अलावा बहुत सारी अलग तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ता था। इन सबने उनके सीखने के अनुभवों को काफ़ी प्रभावित किया। इनमें से कुछ प्रमुख चुनौतियाँ इस प्रकार थीं :

- इस समुदाय के कई विद्यार्थी निम्न आय वाले परिवारों से आते थे। इसके कारण उनके लिए स्कूल की सामग्री, परिवहन (स्कूल आने-जाने) और दूसरे शैक्षिक संसाधनों का ख़र्चा उठाना मुश्किल होता था।
- एक जगह अपना पक्का घर न होने की आवासीय अस्थिरता की वजह से बार-बार एक जगह से दूसरी जगह जाकर बसने के कारण बच्चों की शिक्षा बाधित होती थी। इससे उनके सीखने का क्रम भंग हो जाता था, और अपने साथियों व शिक्षकों के साथ लगातार कोई संवाद या रिश्ते बना पाना उनके लिए कठिन होता था।
- व्यक्तिगत या पारिवारिक मामलों की वजह से उनकी स्कूल में उपस्थिति अनियमित होती थी। इससे भी उनके सीखने की प्रक्रिया में अच्छे-ख़ासे फ़ासले आ जाते थे, और उन्हें अपने सहपाठियों के साथ तालमेल बैठाने में कठिनाई होती थी।
- अपनी पृष्ठभूमि के कारण वे जिस तोहमत, बर्ताव या भेदभाव का सामना करते थे, उसके कारण उनमें अलगाव की भावना पैदा होती थी जो उनके आत्मसम्मान और प्रेरणा के भाव पर बहुत ग़लत असर डालती थी।
- अस्थिरता, आघात, या तनाव के अनुभव अकसर उनमें मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी चुनौतियों के कारण बनते थे, और पढ़ाई-लिखाई में उनकी एकाग्रता, स्कूल में उपस्थिति, और समग्र स्वास्थ्य को प्रभावित करते थे।

कुछ विद्यार्थियों को डिस्लेक्सिया और सीखने की दूसरी अक्षमताओं की वजह से पढ़ने में कठिनाई होती थी। इनकी वजह से उन्हें शब्दों को समझने में परेशानी होती थी। इससे उनमें निराशा व्याप्त हो जाती, और उनकी प्रेरणा जाती रहती थी। कई विद्यार्थियों की होमवर्क, अन्य गतिविधियों और घरेलू कामों से भरी व्यस्त दिनचर्या होती थी, जिससे उन्हें पढ़ने के लिए बहुत कम समय मिल पाता था। इसके अलावा, उनके आसपास का शोरगुल-भरा माहौल पढ़ने पर ध्यान केन्द्रित करना मुश्किल बना देता था। कुछ विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए अनुकूल स्थान, या साथियों और परिवार से ज़रूरी प्रोत्साहन या समर्थन नहीं मिलता था।

इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए एक ऐसे बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसमें शिक्षक, माता-पिता और समुदाय के लोग शामिल हों। रोचक सामग्री प्रदान करके, सहायक वातावरण विकसित करके, और जहाँ ज़रूरत हो वहाँ योजनाबद्ध हस्तक्षेप करके, हम शिक्षकों ने पढ़ने से जुड़ी बाधाओं को पार करने में विद्यार्थियों की मदद की। इससे उनमें हमेशा पढ़ते रहने और सीखते रहने की रुचि पैदा हुई।

नियमित संवाद और स्कूल की गतिविधियों में भागीदारी के माध्यम से मैंने अभिभावकों को शैक्षणिक प्रक्रिया में शामिल किया। इससे विद्यार्थियों के लिए सहायता तंत्र को मज़बूत करने में मदद मिली। रोल प्ले, कठपुतली के खेल, नाटक, आदि के माध्यम से मैंने बुलीइंग (बच्चों द्वारा एक दूसरे को डराने / रौब जमाने) जैसी समस्या का समाधान किया, और एक दूसरे के प्रति सम्मान को बढ़ावा दिया। इससे बच्चों में चीज़ों को साझा करना, बारी-बारी से चीज़ें करना और प्रभावी ढंग से संवाद करना जैसे सामाजिक कौशलों का विकास करने में सहायता मिली।

नतीजा यह हुआ कि इन बच्चों के अभिभावकों ने स्कूल पर विश्वास करना, और जब ज़रूरत हो तब शिक्षकों से मिलकर बात करना शुरू कर दिया। बच्चों की व्यवहारगत समस्याएँ लगभग पूरी तरह हल हो गई थीं, और बच्चे एक समूह की तरह एकजुट हो गए थे। अब इन बच्चों के पास लड़ने-झगड़ने और बेवजह घूमने का समय नहीं होता था। वे निरन्तर कहानियों की किताबें पढ़ने, चित्रकारी करने, बागवानी करने, रंग भरने और शिल्पकारी जैसी गतिविधियों में लगे रहते। उन्होंने कक्षा और स्कूल स्तरीय गतिविधियों में ज़िम्मेदारियाँ ले लीं। मसलन, सुबह की सभाओं में भाग लेना, कक्षा का रखरखाव करना, विभिन्न प्रतियोगिताओं में शामिल होना, आदि। इसके अलावा, वे अपने शैक्षणिक कार्यों पर अधिक ध्यान देने लगे।

अँग्रेज़ी से एकलव्य, भोपाल द्वारा अनुवादित।

गजालक्ष्मी टी, सवरयालु नयागर गवर्नमेंट गर्ल्स प्राइमरी स्कूल, पुदुचेरी

स्कूल तो सबका है

कुसुम लता शर्मा

बाक़ी स्कूलों की तरह हमारे स्कूल में भी मध्याह्न भोजन के समय सभी बच्चे एक साथ बैठकर भोजन करने का आनन्द लेते हैं। मैं और बच्चे, दोनों इस व्यवस्था को देखते हैं। मैं भोजन व्यवस्था, खाने के स्वाद, आदि का ध्यान रखती हूँ। बच्चों का काम यह देखना होता है कि सभी बच्चों ने हाथ धोए या नहीं, खाना सफ़ाई से बन रहा है या नहीं, बैठने की व्यवस्था ठीक है या नहीं, आदि। व्यवस्था देखने वाले बच्चों की ज़िम्मेदारी बदलती रहती है।

एक दिन मैं बच्चों के साथ मिलकर व्यवस्था देख रही थी, और ख़ुश थी कि चलो, सब ठीक है। आमतौर पर, सभी व्यवस्थाएँ ठीक पाने के बाद हम सभी साथी शिक्षिकाएँ साथ बैठतीं, कुछ बातें करतीं, और चाय पीतीं। इस दौरान बातचीत में हम बच्चों के शिक्षण, उनके व्यवहार, आदि के बारे में भी बात करते। बातें करते हुए उस दिन मेरा ध्यान बच्चों के बैठने के तरीक़े पर गया। मैंने देखा कि सपेरा बस्ती से आने वाले सभी बच्चे एक लाइन में एक साथ बैठे हैं, मुस्लिम परिवारों से आने वाले सभी बच्चे एक साथ, और बाक़ी बच्चे एक साथ एक अलग लाइन में बैठे हैं। अगले 4-5 दिन तक मैंने इसका अवलोकन किया और पाया कि बच्चे अलग-अलग बैठते हैं।

अब बच्चों के व्यवहार और उनकी बातचीत पर मेरा ध्यान ज़्यादा था। मैंने एक बच्चे से बातों ही बातों में पूछ लिया, "तुम लोग रोज़ सपेरा बस्ती के बच्चों से अलग क्यों बैठते हो? तुम लोगों का क्या कोई झगड़ा हुआ है?" उस बच्चे ने कहा, "नहीं मैम, वो बच्चे दूसरे वर्ग के हैं और कूड़ा बीनते हैं, इसलिए हम उन लोगों के साथ नहीं बैठते।" यह बात मुझे खटक गई। मैंने पूछा, "तुम समीर (जो कि एक मुस्लिम बालक है) के साथ भी नहीं बैठते?" उसने कहा, "नहीं मैडमजी, हम अलग ही बैठेंगे!" अब मुझे थोड़ा सोचना पड़ा कि जब ये सभी एक साथ खेलते हैं तो खाना खाते समय ही क्यों अलग बैठते हैं। मुझे यह ठीक नहीं लगा।

अगले दिन जैसे ही मध्याह्न भोजन की घण्टी बजी, मैं बच्चों के बीच उस जगह चली गई जहाँ वो खाना खाने वाले थे। मैंने कहा, "आज से मैं भी तुम लोगों के साथ ही खाना खाऊँगी।" बच्चे बहुत ख़ुश नज़र आ रहे थे। पर थोड़ी ही देर में कुछ बच्चों के चेहरे की ख़ुशी थोड़ी फीकी पड़ गई जब उन्होंने देखा कि मैं सपेरा बस्ती के बच्चों की लाइन के बीच बैठ गई। मैंने कहा, "मैं रोज़ यहीं खाना खाऊँगी, लेकिन कल दूसरी लाइन में बैठूँगी।" फिर मैंने भोजन माता को कहा कि मुझे भी थाली दो। उन्होंने बाक़ी बच्चों की तरह मुझे भी एक थाली दे दी और उन्हीं की तरह ही खाना परोसा। खाना खाने के बाद मैंने अपनी थाली उठाई, धोई और टोकरे में रख दी। अगले दिन मैं दूसरी लाइन में बैठ गई, और यह क्रम एक सप्ताह तक चला। मैं खाना खाते हुए कुछ सामान्य-सी बातचीत भी करती, जैसे कल शाम को घर पर किसने क्या-क्या किया; होमवर्क किया या नहीं; आदि।

धीरे-धीरे मेरे नज़दीक बैठने के चक्कर में बच्चे आपस में मिल जुल कर बैठने लगे। मैं नोटिस कर रही थी कि अब बच्चे जाति, धर्म या मोहल्ले के अनुसार नहीं, बल्कि जिसको जहाँ जगह मिल रही थी वहाँ बैठ रहे थे, और सब प्यार से खा रहे थे। यह देखकर मुझे सुकून मिला। अब बच्चे पहचान में नहीं आ रहे थे कि वे किस जाति या धर्म के हैं, सब मिलकर खाना खा रहे थे।

हाँ, एक बात और, कभी-कभी छोटे बच्चे घर से भी कुछ खाने को लाते और मुझसे शेयर करते थे। वे अपने हाथ से मेरे मुँह में टुकड़ा डालते, मैं ख़ुशी-ख़ुशी खा लेती, और अपना खाना भी उनके साथ शेयर करती।

एक सप्ताह बाद मैंने महसूस किया कि अब सब मिलकर बैठने लगे हैं, और बैठने की कोई अलग लाइन नहीं है। उसके बाद, मैं 5 दिन के प्रशिक्षण में भाग लेने चली गई। वापस आकर भी बच्चों को एक साथ बिना किसी भेदभाव के मिलकर खाना खाते देख मुझे बेहद ख़ुशी हुई।

इस वाक़िए के बारे में मैंने अपने साथी शिक्षकों से भी बात की। मैंने उनसे सूक्ष्म ढंग से होने वाले इस तरह के भेदभाव को पहचान पाने, और इनको एक मुद्दा बनाने के बजाय बातचीत व क्रियाकलापों के ज़रिए दूर करने के बारे में कहा।

कुसुम लता शर्मा, राजकीय प्राथमिक विद्यालय, अजबपुर, देहरादून, उत्तराखण्ड

सिखाना वैसे, बच्चे सीखना चाहें जैसे

मधुमालती

बेंगलूरु ज़िला संस्थान के साथ अपने काम के दौरान मैं कई शासकीय प्राथमिक स्कूलों में जाया करता था। उन्हीं में से एक, गवर्नमेंट मॉडल सीनियर प्राइमरी स्कूल, पुट्टनहल्ली (अब बेंगलूरु पब्लिक स्कूल), एक बड़ा स्कूल था जिसमें हज़ार से भी ज़्यादा बच्चे थे। कक्षा 4 में कन्नड़ माध्यम में सभी विषयों को एक शिक्षिका मधुमालती पढ़ाया करती थीं। शिक्षण के क्षेत्र में उन्हें तीन दशकों का अनुभव था। किस बच्चे की क्या ज़रूरत है, उसे किस तरह का मार्गदर्शन चाहिए, वे यह पहचानती थीं, और उसी के अनुसार पढ़ाने की योजना बनाती थीं।

उनके शिक्षण के कई उपयोगी तरीक़ों में से एक था, उनका कक्षा को तीन समूहों में बाँट देना। यथा– बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान (एफ़एलएन) स्तर के विद्यार्थी, मध्यम स्तर के विद्यार्थी, और उच्च उपलब्धियाँ प्राप्त करने वाले विद्यार्थी। वे ऐसा सिर्फ़ अपने पढ़ाने की प्रक्रिया में सहायता के लिए करती थीं। न तो कक्षा में विद्यार्थियों को अलग-अलग बैठाया जाता था न ही किसी विद्यार्थी को बाक़ियों से कमतर या बेहतर महसूस करवाया जाता था। वे बहुत अच्छे से समझती थीं कि बच्चों की सीखने की गति इतनी अलग-अलग क्यों होती है, और जिस तरह के सकारात्मक सुदृढ़ीकरण की उन्हें ज़रूरत होती थी उसी के अनुरूप सीखने की प्रक्रियाओं में वे बच्चों को संलग्न रखती थीं।

वे दो अलग-अलग और सरल प्रश्नावली तैयार करती थीं। वे एक प्रश्नावली विद्यार्थियों को शैक्षणिक सत्र की शुरुआत में देती थीं, और दूसरी सत्र के अन्त में। ये प्रश्नावलियाँ उनके स्वयं के अध्ययन के लिए होती थीं। इससे उन्हें यह समझने में सहायता होती थी कि किस बच्चे को अभ्यास पत्रक (प्रैक्टिस शीट) की आवश्यकता है, किसे उपचारात्मक शिक्षण (रेमेडियल टीचिंग) की, किसे मुद्रित सन्दर्भ सामग्री की, और किस बच्चे को पूरक अभ्यास पत्रक या लाइब्रेरी की किताबों की ज़रूरत है। वे कहती हैं, "हम बच्चों को किस तरह सिखाना चाहते हैं, इसके बजाय जिस तरह वे सीखना चाहते हैं, उस तरह से उन्हें सिखाना चाहिए। बच्चे अपनी क्षमताओं के अनुसार सीखते हैं। अगर हम उनकी ज़रूरतों पर ध्यान दिए बिना ही हर चीज़ का आकलन करेंगे तो सारे प्रयास बेकार जाएँगे।"

उनका लाइब्रेरी सेशन का प्रबन्धन भी देखने लायक़ था। स्कूल में एक बहुत बड़ी लाइब्रेरी थी। इसमें रूम टू रीड द्वारा प्रथम फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित चार स्तरों की बच्चों की किताबें थीं। लाइब्रेरी सेशन के पहले ही शिक्षिका लाइब्रेरी में जाकर अपने विद्यार्थियों के लिए

किताबें निकाल लेतीं, और उन्हें चित्र किताबों, न्यूनतम पाठ वाली कहानी की किताबों, दो भाषाओं वाली, कम चित्रों और अधिक पाठ वाली, और बिना चित्रों वाली कहानी की किताबों में बाँट देती थीं। लाइब्रेरी सेशन के दौरान वे एक कहानी ज़ोर से पढ़कर सुनाती थीं। बच्चों को कहानी समझ में आई है या नहीं, यह जानने के लिए वे उसपर चर्चा करती थीं। बच्चे कहानी को दोबारा सुना सकते थे, और लाइब्रेरी में लगाने के लिए उस कहानी के चित्र भी बना सकते थे। इसके बाद, पढ़ने के लिए बच्चे अपनी पसन्द की कोई भी किताब चुन सकते थे। बच्चों को लाइब्रेरी में एक 'बुक डायरी' रखने, उसमें पढ़ी गई किताब के बारे में अपने विचार लिखने के साथ-साथ अपनी पसन्द की कहानियाँ सुनाने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाता था। इस तरह, पूरी कक्षा को पढ़ने में तल्लीन होते देखना सुखद अनुभव था।

शिक्षिका का कहना है, "हमारे स्कूल में बहुत सारी अच्छी किताबें हैं। उन्हें अलमारी में बन्द करके रखने का क्या फ़ायदा। यदि हम यह समझ जाएँ कि बच्चे को किस तरह की किताब की ज़रूरत है, और उसे वह उपलब्ध करवा दें तो हम उसमें पढ़ने की ललक पैदा कर सकते हैं। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो हम उन बच्चों के साथ बहुत अन्याय करते हैं जिनके घर पर इस तरह की सुविधा उपलब्ध नहीं है। कुछ नहीं तो कम-से-कम बच्चों को किताबों के पन्ने ही पलटकर देखने दें। सभी बच्चे किताबें नहीं पढ़ते। कुछ बच्चे कहानी सुनते हैं, कुछ चित्र बनाते हैं, वहीं कुछ कहानियाँ सुनाते हैं। लेकिन ये सब उनके सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा है। इसलिए कम-से-कम एक मौक़ा तो सभी को मिलना चाहिए।"

अँग्रेज़ी से एकलव्य, भोपाल द्वारा अनुवादित।

मधुमालती, गवर्नमेंट मॉडल सीनियर प्राइमरी स्कूल, पुट्टनहल्ली, कोन्नाकुंटे, बेंगलूरु

(राघवेंद्र हेलें, कन्नड़ इनिशिएटिव टीम, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु से बातचीत पर आधारित)

सतत प्रयासों से ही सम्भव है शिक्षा में समावेशन

पूनम भाटिया

एक छोटी-सी 7 बरस की बच्ची थी। वह दूसरी कक्षा में पढ़ती थी, और कक्षा में सबसे अलग-थलग रहती थी। मानो वह सबसे छुप जाना चाहती हो। कुछ भी पूछने पर वो ख़ुद में सिमट जाती, और उसकी आँखें भर आती थीं। मैं अभी इस विद्यालय में नई-नई ही आई थी। उस बच्ची को यूँ सहमा हुआ देखना मुझे चिन्तित कर रहा था।

विद्यालय में पहले से कार्यरत शिक्षकों से मैंने उस बच्ची के बारे में बात की, और पूछा कि यह इतनी चुप, गुमसुम और अलग-थलग क्यों रहती है। क्या इसे कोई शारीरिक या मानसिक परेशानी है? बातचीत में पता चला कि बच्ची विद्यालय में प्रवेश के समय से ही ऐसी है। मैंने उसके मम्मी-पापा को बुलाया, और उनसे बातचीत की। उसकी माँ कुछ परेशानी और कुछ तंज़ के साथ बोलीं, "हम ग़रीब लोग हैं, और इसका रंग काफ़ी ज़्यादा गहरा है। कोई इससे क्या शादी करेगा!" मैंने आश्चर्य से पूछा, "आप इसकी शादी अभी ही कर देंगी क्या?" उन्होंने कहा, "नहीं, अभी तो नहीं करूँगी। लेकिन जब भी करेंगे, हम जैसे ग़रीब लोगों के लिए लड़की, वह भी दबे हुए रंग की, बोझ तो है ही।" मैंने उन्हें समझाया और गुज़ारिश की कि आप अपनी बच्ची से आज के बाद रंग-रूप के विषय पर बात मत करना। रही बात इसकी शादी की तो वह जब होनी होगी, हो जाएगी। अभी आप सिर्फ़ इसकी पढ़ाई पर ध्यान दीजिए। मैंने उस बच्ची के माता-पिता से हर 15 दिन में मुझसे मिलने का कहकर उन्हें भेज दिया।

अब मैंने बच्ची के साथ काम करना शुरू किया। उसका रंग बहुत गहरा था। उस छोटी-सी बच्ची के मन में उसके रंग का इतना असर होगा कि उसका समूचा व्यक्तित्व ही मुरझाने लगेगा, ऐसा मैंने सोचा ही नहीं था। लेकिन यह समाज, आसपास के लोग जाने अनजाने ऐसे ही अपना प्रभाव डालते हैं। ख़ैर, बच्ची बातचीत करने के लिए भी मुँह तक नहीं खोलती थी। वह एक शब्द भी नहीं बोलती थी। उससे कुछ भी पूछा जाता तो वह चुप होकर सिर्फ़ देखती रहती थी। धीरे-धीरे मैंने प्रतिदिन उससे बातचीत करनी शुरू की और सभी शिक्षकों को भी कहा कि आप भी उससे सामान्य बच्चों के जैसे व्यवहार करिए, क्योंकि यह बच्ची मानसिक व शारीरिक रूप से पूरी तरह स्वस्थ है। ऐसे बच्चों के साथ हमें थोड़े धैर्य के साथ काम करना पड़ता है। इस बीच, मैंने उसे चित्रों की किताबें और दूसरी छोटी-छोटी किताबें लाकर दीं। वह बच्ची उन किताबों और हमारी बातचीत के साथ धीरे-धीरे सहज होने लगी। हमारे लिए यह एक बड़ी चुनौती थी कि वह स्वयं भी 'ख़ुद को' सामान्य समझे और दूसरे बच्चों के साथ सहज महसूस करे। वह भी दूसरे सारे बच्चों की तरह खेले, कूदे, पढ़े, मस्ती व शरारतें करे। मैं चाहती थी कि वह दबी सहमी न रहे बल्कि अपने मन की बात करे।

मैंने इस विषय के मनोवैज्ञानिक पक्षों को समझा, कुछ किताबें पढ़ीं और कुछ शिक्षाविदों, चिकित्सकों, आदि से भी चर्चा की। इसके बाद हम सब अध्यापकों ने मिलकर सोचा और कुछ उपाय किए। मसलन, कक्षा-कक्षीय गतिविधियों में सब बच्चों के साथ जब हम

खेल खेलते तो उसे भी शामिल करते, गोला बनाने के समय उसका हाथ भी पकड़ते, कक्षा में कभी कुछ ज़रूरत होती तो दूसरे बच्चों के साथ उसे भी बुलाते, कहानी सुनाने के लिए प्रेरित करते, आदि। इसके साथ ही हम उसके माता-पिता से भी लगातार बातचीत करते रहते। समय के साथ ऐसा हुआ कि वह ख़ुद ही आगे आने लगी और कम शब्दों में धीरे-धीरे बोलकर अपनी बात कहने लगी।

एक दिन दबे स्वर में वह मुझसे बोली कि कुछ बच्चे मुझे काली कहकर चिढ़ाते हैं। यह कहते ही उसकी आँखें भर आईं। ऐसी मनोदशा में भला उस बच्ची का मन पढ़ने में कैसे लगेगा जबकि वह अपने अस्तित्व को लेकर ही जूझ रही हो। तब मैंने उससे बातचीत की कि किसी का भी रंग कैसा भी हो सकता है। अगर आप पढ़-लिख लोगी, बेहतर इंसान बनोगी तो सब आपको बहुत मानेंगे। इसलिए अपना ध्यान सिर्फ़ पढ़ाई पर लगाओ। इसके बाद वह सहज होने लगी, खेलने लगी, उत्सव में नृत्य करने लगी, और लिखने-पढ़ने में ध्यान देने लगी। पर यह सब एक दिन में नहीं हुआ। असल में, यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। उस छात्रा ने विद्यालय की अन्तिम कक्षा (8वीं) उत्तीर्ण कर कक्षा 9 में दूसरे विद्यालय में प्रवेश ले लिया है। अब वह समाज की मुख्यधारा में शामिल हो चुकी है। हालाँकि, वह अभी भी बहुत उन्मुक्त नहीं हो पाई है, पर इस बात की ख़ुशी है कि अब वह ख़ुद पर थोड़ा विश्वास करने लगी है। रंग कितना बाधा बनेगा पता नहीं, पर शिक्षा उसे सशक्त बनाएगी ये यक़ीन ज़रूर है।

हमारे समाज के तानेबाने के विविध रंगों से सजे हमारे बच्चे कब, किस परिस्थिति का सामना करने के लिए मजबूर हो जाते हैं, पता ही नहीं चलता। ऐसे में 'समावेशन' शब्द बोलने में तो बहुत आसान लगता है, लेकिन जब इसपर क्रियाकलाप किए जाते हैं तो कई बार कार्य असम्भव-सा लगने लगता है, और कभी-कभी हम अध्यापकों की हिम्मत भी टूटने लगती है क्योंकि इस तरह के कार्यों के परिणाम भी जल्दी ही परिलक्षित नहीं होते हैं।

पूनम भाटिया, राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, बंबाला सांगानेर, जयपुर, राजस्थान